पर्वत प्रदेश में पावस

कविता की व्याख्या

1.

पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश,
पल-पल परिवर्तित प्रकृति-वेश।
मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग - सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार-बार
नीचे जल में निज महाकार,
जिसके चरणों में पला ताल
दर्पण सा फैला है विशाल!

शब्दार्थ: पावस-ऋतु = वर्षा ऋतु, परिवर्तित = बदलता हुआ, प्रकृति वेश = प्रकृति का रूप (वेशभूषा), मेखलाकार = मंडप के आकार वाला, अपार = जिसकी सीमा न हो, सहड्ड = हशारों, दृग-सुमन = फूल रूपी आँखें, अवलोक = देख रहा, निज = अपना, महाकार = विशाल आकार, ताल = तालाब, दर्पण = शीशा।

व्याख्या: कवि कहते हैं कि वर्षा ऋतु थी। संपूर्ण प्रदेश पर्वतों से घिरा हुआ था। वर्षा ऋतु में बादलों की उमड़-घुमड़ के कारण प्रकृति प्रत्येक क्षण अपना रूप परिवर्तित कर रही थी। कभी बादलों की घटा के कारण अंध्कार हो जाता था, तो कभी बादलों के हटने से प्रदेश चमकने लगता था। इसी प्रकार क्षण-प्रति-क्षण प्रकृति अपना रूप परिवर्तित कर रही थी। इस प्राकृतिक वातावरण में मंडप के आकार का विशाल पर्वत अपने सुमन ;पूफलोंद्ध रूपी नेत्रों को फैलाए नीचे शीशे के समान चमकने वाले तालाब के निर्मल जल को देख रहा है। ऐसा प्रतीत होता है मानो यह तालाब उसके चरणों में पला हुआ है और यह दर्पण जैसा विशाल है। पर्वत पर उगे हुए फूल, पर्वत के नेत्रों के समान लग रहे हैं और ऐसा प्रतीत होता है मानो ये नेत्रा दर्पण के समान चमकने वाले विशाल तालाब के जल पर दृष्टिपात कर रहे हैं अर्थात पर्वत अपने सौंदर्य का अवलोकन तालाब रूपी दर्पण में कर रहा है। भाव यह है कि वर्षा ऋतु में प्रकृति का रूप निखर जाता है। वह इस ऋतु में अपने सौंदर्य को निहार रही है।

काव्य-सौंदर्य:

भाव पक्ष:
1. वर्षा ऋतु के समय प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन अत्यंत सजीव लगता है।
2. पर्वत का मानवीकरण किया गया है।

कला पक्ष:

1. पर्वत प्रदेश, परिवर्तित प्रकृति में अनुप्रास अलंकार है।
2. पल-पल, बार-बार में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।
3. ‘दृग-सुमन’ में रूपक अलंकार तथा ‘दर्पण-सा पैफला’ में उपमा अलंकार है।
4. चित्रात्मक शैली तथा संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

2.

गिरि का गौरव गाकर झर-झर
मद में नस-नस उत्तेजित कर
मोती की लड़ियों-से सुंदर
झरते हैं झाग भरे निर्झर!
गिरिवर के उर से उठ-उठ कर
उच्चाकांक्षाओं से तरुवर
हैं झाँक रहे नीरव नभ पर
अनिमेष, अटल, कुछ चिंतापर।

शब्दार्थ: गिरि = पर्वत, गौरव = सम्मान, मद = मस्ती, आनंद, उत्तेजित करना = भड़काना, निर्झर = झरना, उर = हृदय, उच्चाकांक्षाओं = ऊँची आकांक्षा, तरुवर = वृक्ष, नीरव = शांत, नभ = आकाशञ्च अनिमेष = स्थिर दृष्टि, अपलक, अटल = स्थिर।

व्याख्या: फेन से भरे हुए झरने झर-झर करते हुए बह रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो उस झरने का स्वर रोम-रोम को रोमांचित कर रहा है और उत्साह भर रहा है। झरते हुए पानी की बूँदें मोतियों के समान सुशोभित हो रही हैं। ऊँचे पर्वत पर अनेक वृक्ष लगे हुए हैं। ये वृक्ष ऐसे प्रतीत होते हैं मानो ये पर्वतराज के हृदय में उठने वाली महत्वाकांक्षाएँ हों। उन्हें एकटक शांत आकाश की ओर देखते हुए लगता है कि मानो ये चिंतित होकर अपने स्थान पर खड़े हैं।

काव्य-सौंदर्य:

भाव पक्ष:

1. पर्वत का मानवीकरण किया गया है।
2. प्रकृति सौंदर्य का सजीव चित्राण किया गया है।

कला पक्ष:

1. संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग किया गया है।
2. भाषा प्रभावोत्पादक होने के साथ-साथ भावाभिव्यक्ति में सक्षम है।
3. ‘झर-झर’, ‘नस-नस’, ‘उठ-उठ’ में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।

4. ‘झरते झाग’, ‘नीरव नभ’, ‘अनिमेष अटल’ में अनुप्रास अलंकार है।
5. मोतियों की लड़ियों से सुंदर ‘‘उच्चाकांक्षाओं से तरुवर’’ में उपमा अलंकार है।

3.

उड़ गया, अचानक लो, भूध्र
फड़का अपार पारद के पर!
रव-शेष रह गए हैं निर्झर!
है टूट पड़ा भू पर अंबर!
धँस गए धरा में सभय शाल!
उठ रहा धुआँ, जल गया ताल!
यों जलद-यान में विचर-विचर
था इंद्र खेलता इंद्रजाल।

शब्दार्थ: भूध्र = पर्वत, वारिद = बादल, रव-शेष = केवल शोर बाकी रह जाना, निर्झर = झरना, अंबर = आकाश, भू = ध्रती, धरा, सभय = डरकर, शाल = वृक्ष, ताल = तालाब, जलद = यान ;बादल रूपी वाहनद्ध, विचर-विचर = घूम-घूमकर, इंद्रजाल = इंद्रधनुष।

व्याख्या: कवि कहते हैं कि देखा! अचानक यह क्या हो गया? वह पहाड़ जो अभी तक दिखाई दे रहा था, वह न जाने कहाँ चला गया। वह पर्वत बादलों के अनेक पर फड़फड़ाने के कारण न जाने कहाँ छिप गया अर्थात आकाश में अत्यध्कि संख्या में बादल घिर आए और वह पर्वत उन बादलों की ओट में छिप गया। इस धुंधमय वातावरण में जबकि सब कुछ छिप गया, केवल झरने के स्वर सुनाई दे रहे हैं। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो ध्रती पर आकाश टूट पड़ा हो। इस वातावरण में शांत स्वभाव वाले शाल के वृक्ष भी धरती के अंदर धँस गए। ऐसे रौद्र वातावरण में धुंध को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो यह धुंध न होकर तालाब के जलने से उठने वाला धुआँ है। इस प्रकार बादल रूपी वाहन में घूमता हुआ प्रकृति का देवता इंद्र नए-नए खेल खेल रहा है अर्थात प्रकृति नित्य प्रति नवीन क्रीड़ाएँ कर रही है।

काव्य-सौंदर्य:

भाव पक्ष:
1. पूरे पद्य में प्रकृति का मानवीकरण किया गया है।

कला पक्ष:
1. ‘अपार वारिद के पर में’ रूपक अलंकार और ‘विचर-विचर’ में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।
2. संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया गया है।
3. चित्रात्मक शैली और दृश्य बिंब का प्रयोग किया गया है।

कवि परिचय

सुमित्रानंदन पंत

इनका जन्म सन 20 मई 1900 को उत्तराखंड के कौसानी-अल्मोड़ा में हुआ था। इन्होनें बचपन से ही कविता लिखना आरम्भ कर दिया था। सात साल की उम्र में इन्हें स्कूल में काव्य-पाठ के लिए पुरस्कृत किया गया। 1915 में स्थायी रूप से साहित्य सृजन किया और छायावाद के प्रमुख स्तम्भ के रूप में जाने गए। इनकी प्रारम्भिक कविताओं में प्रकृति प्रेम और रहस्यवाद झलकता है। इसके बाद वे मार्क्स और महात्मा गांधी के विचारों से प्रभावित हुए।

प्रमुख कार्य

कविता संग्रह – कला और बूढ़ा चाँद, चिदंबरा
कृतियाँ – वीणा, पल्लव, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्णकिरण और लोकायतन।
पुरस्कार – पद्मभूषण, ज्ञानपीठ, साहित्य अकादमी पुरस्कार।

कविता का सार

'पर्वत प्रदेश में पावस' कविता प्रकृति के कुशल चितेरे सुमित्रानंदन पंत द्वारा रचित है। इस कविता में वर्षा ऋतु में क्षण-क्षण प्रकृति के परिवर्तित हो रहे परिवेश का चित्राण किया गया है। मेखलाकार पर्वत अपने ऊपर खिले हुए पूफलों के रंगों के माध्यम से तालाब के जल में अपना प्रतिबिंब देखकर अपने सौंदर्य को निहार रहा है। तालाब का जल दर्पण के समान प्रतीत हो रहा है। झरने झरते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वे पर्वत का गौरव गान कर रहे हैं। झरनों की झाग मोती की लड़ियों की भाँति प्रतीत हो रहा है। पर्वत पर उगे हुए ऊँचे-ऊँचे वृक्ष शांत आकाश में स्थिर, अपलक और चिंताग्रस्त होकर झाँक रहे हैं। अचानक पर्वत बादलों के पीछे छिप गया। उस समय झरने का केवल शोर बाकी रह गया। तब आकाश ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह पृथ्वी पर टूट कर गिर रहा है। वातावरण में धुंध चारों आरे फैल गई। धुंध ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो वह तालाब के जलने पर उठने वाला धुआँ हो। इस प्रकार बादल रूपी वाहन में विचरण करता हुआ इंद्र अपना खेल खेल रहा था। इन्हीं चीशों का संपूर्ण कविता में पंत जी ने प्रकृति का मानवीकरण किया है।